39

उपभोग-क्रिया अथवा उपभोग-प्रवृत्ति
[THE CONSUMPTION FUNCTION]

परिचय (Introduction)

जिस प्रकार माल की माँग लगभग उसके मूल्य पर निर्भर करती है, उसी प्रकार किसी वस्तु का उपभोग आय के स्तर पर निर्भर करता है। सरल शब्दों में, उपभोग तथा आय के मध्य निकट सम्बन्ध है। अनुभवाश्रित उपभोग-आय सम्बन्ध उपभोग क्रिया द्वारा प्रदर्शित होता है। केन्स अर्थशास्त्र की उपभोग-क्रिया एक महत्वपूर्ण औजार (tool) है।

केन्स का उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम
[KEYNES' PSYCHOLOGICAL LAW OF CONSUMPTION]

केन्स का यह साधारण कथन है जिसे उनके द्वारा प्रतिपादित **'उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम'** अथवा **'उपभोग का प्राथमिक नियम'** कहा जाता है। इस नियम को एक सामान्य प्रवृत्ति कहा जा सकता है। यह प्रवृत्ति काल्पनिक न होकर वास्तविक ही होती है। सामान्यतः इस नियम को निम्न तीन सम्बन्धित उप-विभागों में विभक्त किया जाता है :

(अ) जब कुल आय बढ़ती है तो कुल उपभोग-व्यय भी बढ़ता है किन्तु वह आय-वृद्धि की अपेक्षा कुछ कम मात्रा में बढ़ता है। इसका कारण यह है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, उपभोक्ता की आवश्यकताएँ अधिकाधिक संख्या में सन्तुष्ट होती चली जाती हैं। परिणामतः समूची अतिरिक्त आय को अब उपभोग पर व्यय करना आवश्यक नहीं रहता। उपभोग पर व्यय निश्चय ही बढ़ेगा किन्तु उस अनुपात में नहीं जिसमें आय बढ़ती है।

(ब) आय-वृद्धि को बचत एवं व्यय के बीच एक निश्चित अनुपात में विभाजित किया जायेगा, यद्यपि उस अनुपात का निर्धारण व्यावहारिक रूप में एक विस्तृत अध्ययन के आधार पर ही किया जा सकता है। यह तर्क-वाक्य (proposition) उप-विभाग (अ) से ही निकला है। स्पष्ट है कि जब समूची आय-वृद्धि उपभोग पर व्यय नहीं की जाती तो उसका कुछ अंश अवश्य ही बचा लिया जाता है।

(स) आय-वृद्धि के कारण पहले की अपेक्षा व्यय एवं बचत दोनों में ही कमी होने की सम्भावना नहीं रहती। दूसरे शब्दों में, जैसे ही किसी व्यक्ति की आय बढ़ती है, उसका व्यय एवं बचत दोनों ही बढ़ जाते हैं। आय-वृद्धि होने पर कोई भी व्यक्ति आय को बढ़ने से नहीं रोकता जब तक कि वह बहुत ही कन्जूस न हो। जब किसी सामान्य व्यक्ति की आय बढ़ती है तो वह निश्चय ही उपभोग पर अधिक व्यय करता है। इसका कारण यह है कि आय-वृद्धि होने पर वह जीवन की सुख-सुविधाओं का अधिक उपभोग करना चाहता है। अतः आय बढ़ने पर उसका व्यय एवं बचत, दोनों बढ़ जाते हैं।

उपर्युक्त तीनों तत्वों में से प्रथम तत्व सबसे महत्वपूर्ण है। वास्तव में, प्रथम तत्व केन्स के उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम का सार (substance) प्रस्तुत करता है। **यह नियम लोगों की इस प्रवृत्ति पर जोर देता है कि आय बढ़ने पर वे अपनी समूची आय-वृद्धि को उपभोग-वस्तुओं पर व्यय नहीं करते।** यह नियम लोगों के इस अल्पकालीन व्यवहार का सूचक है।

केन्स के उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम की मान्यताएँ (Assumptions of Keynes' Psychological Law of Consumption)

यह नियम तीन मुख्य मान्यताओं पर आधारित है। इन मान्यताओं को हम इस नियम की परिसीमाएँ भी कह सकते हैं, जो निम्नलिखित हैं :

(1) **वर्तमान मनोवैज्ञानिक-संस्थागत स्थिति यथास्थिर रहती है** (The present psychological-institutional complex remains constant)—केन्स इस बात को मान लेते हैं कि वर्तमान मनोवैज्ञानिक-संस्थागत स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता। दूसरे शब्दों में, केन्स मान लेते हैं कि उपभोग केवल आय पर ही निर्भर रहता है और आय-वितरण, कीमत-स्तर, जनसंख्या-वृद्धि की दर, लोगों की आदतें, फैशन, मानसिक प्रवृत्ति आदि जैसे संस्थागत एवं मनोवैज्ञानिक तत्व यथास्थिर ही रहते हैं। (संक्षेप में, लोगों की उपभोग-प्रवृत्ति यथास्थिर मान ली गयी है।) वस्तुतः संस्थागत एवं मनोवैज्ञानिक तत्व अल्पकाल में नहीं बदलते। इस तरह जहाँ तक अल्पकाल का सम्बन्ध है, केन्स के इस नियम को यथार्थ ही समझना चाहिए। लेकिन दीर्घकालीन में ये मनोवैज्ञानिक एवं संस्थागत तत्व अवश्य ही बदल जाते हैं। परिणामतः लोगों की उपभोग-प्रवृत्ति यथास्थिर नहीं रह सकती। अतः दीर्घकाल में इस नियम की क्रियाशीलता सन्देहात्मक है।

(2) **परिस्थितियाँ सामान्य** (normal) **बनी रहनी चाहिए**—इस नियम की दूसरी मान्यता यह है कि देश में परिस्थितियाँ सामान्य बनी रहनी चाहिए। युद्ध, क्रान्ति, राजनीतिक उथल-पुथल, महान् स्फीति (runaway inflation) जैसी असामान्य परिस्थितियाँ अर्थ-व्यवस्था में नहीं होनी चाहिए। अतः यह नियम तभी सत्य सिद्ध होगा जब अर्थ-व्यवस्था में सामान्य परिस्थितियाँ विद्यमान होंगी।

(3) **देश में अबन्ध-उद्यम पर आधारित धनी एवं समृद्धशाली पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था होनी चाहिए** (The country should have a rich and prosperous capitalist economy based upon *laissez-faire*)—इस नियम की तीसरी मान्यता यह है कि देश धनी एवं समृद्धशाली हो और अबन्ध-उद्यम नीति का अनुसरण करता हो। निर्धन एवं पिछड़े हुए समाज में इस नियम के लिए कोई स्थान नहीं है। कारण स्पष्ट है। निर्धन समाज में उपभोग एवं बचत के बीच चयन का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। ऐसे समाज में लोगों की बहुत-सी आवश्यकताएँ असन्तुष्ट रहती हैं और जब भी उनकी आय में कुछ वृद्धि होती है, वे तुरन्त ही अपनी असन्तुष्ट आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने का प्रयास करते हैं। कभी-कभी तो समूची आय-वृद्धि उपभोग पर ही व्यय कर दी जाती है। इस तरह केन्स के उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम की क्रियाशीलता में बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। लेकिन ग्रेट ब्रिटेन तथा अमरीका जैसे देशों की न्यून-उपभोग तथा अधिक बचत वाली अर्थ-व्यवस्थाओं में केन्स का उक्त नियम पूर्णतः लागू होता है।

केन्स के उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम की कुछ निहित बातें निम्न प्रकार हैं :

केन्स के नियम की कुछ निहित बातें (Implications of Keynes' Psychological Law of Consumption)

(1) **यह नियम उपभोग-क्रिया अथवा उपभोग-प्रवृत्ति के महत्व पर प्रकाश डालता है।** चूँकि उपभोग-व्यय अधिकांशतः व्यक्ति की आय पर निर्भर करता है, इसलिए इस नियम के अनुसार उपभोग-क्रिया स्थिर रहती है। उपभोग-क्रिया की स्थिरता के कारण आय-वृद्धि तथा उपभोग-व्यय-वृद्धि के बीच खाई (gap) उत्पन्न हो जाती है। निवेश की मात्रा को बढ़ाकर इस खाई को पाटना आवश्यक हो जाता है। यदि निवेश को इसी अनुपात में नहीं बढ़ाया जाता तो निश्चय ही अर्थ-व्यवस्था में मन्दी एवं बेरोजगारी उत्पन्न हो जायेगी। अतः उत्पादन एवं रोजगार को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि निवेश की दर को बढ़ाया जाय। इस प्रकार केन्स का उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम पूर्ण रोजगार-कार्यक्रम में निवेश के महत्व पर समुचित प्रकाश डालता है।

(2) **इस नियम के अनुसार यद्यपि समाज की आय में वृद्धि होती है लेकिन उपभोग-व्यय उसी अनुपात में नहीं बढ़ता जिसमें आय बढ़ती है।** आय-वृद्धि तथा उपभोग-व्यय-वृद्धि के बीच समायोजन के अभाव में अर्थ-व्यवस्था में अति-उत्पादन तथा सामान्य बेरोजगारी की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में अबन्ध-उद्यम नीति (*laissez-faire* policy) बेकार हो जाती है और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में सुधार करने हेतु सरकार को हस्तक्षेप करना ही पड़ता है।

(3) जैसा कि पहले कहा गया है, **उपभोग-व्यय-वृद्धि सदैव आय-वृद्धि से पीछे रह जाती है। स्वभावतः पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।** वस्तुओं की अपर्याप्त माँग के कारण पूँजी की सीमान्त उत्पादकता नीचे गिर जाती है। दूसरे शब्दों में, उद्योग सम्बन्धी लाभ में कमी हो जाती है। निवेश की मात्रा गिर जाती है और देश की आर्थिक उन्नति को आघात पहुँचता है।

(4) **यह नियम व्यापार-चक्र** (trade-cycle) **के मोड़ बिन्दुओं** (turning points) **की भी समुचित व्याख्या करता है।** यह नियम बताता है कि तेजी से मन्दी इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि यद्यपि लोगों की आय तो बढ़ जाती है लेकिन उपभोग-व्यय उसी अनुपात में नहीं बढ़ पाता। इसी प्रकार, यह नियम बताता है कि मन्दी से तेजी इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि यद्यपि लोगों की आय घट जाती है लेकिन उपभोग-व्यय उसी अनुपात में नहीं घट पाता।

(5) **चूँकि उपभोग-व्यय वृद्धि साधारणतः आय-वृद्धि से पीछे रह जाती है, इसलिए देश में अधिक-बचत की समस्या** (over-saving) **खड़ी हो जाती है।** इस समस्या से गरीब तथा पिछड़े हुए देश की अपेक्षा धनी एवं समृद्धशाली देशों को अधिक खतरा होता है।

(6) अन्तिम, **यह नियम समाज में आय-वृद्धि के विभिन्न स्वरूप की भी व्याख्या करता है।** जब कभी देश में मुद्रा-पूर्ति को बढ़ाया जाता है तो कुल आय उसी अनुपात में नहीं बढ़ती जिस अनुपात में मुद्रा-पूर्ति बढ़ती है। कारण स्पष्ट है। लोग अपना उपभोग-व्यय उसी अनुपात में नहीं बढ़ाते जिसमें आय बढ़ती है।

इसी नियम पर केन्स द्वारा प्रतिपादित उपभोग-क्रिया (अथवा उपभोग-प्रवृत्ति) प्रत्यक्षतः आधारित है। अब हम इसका विस्तृत अध्ययन करेंगे।

उपभोग-प्रवृत्ति (अथवा उपभोग-क्रिया)

[THE PROPENSITY TO CONSUME OR THE CONSUMPTION FUNCTION]

उपभोग-प्रवृत्ति अथवा **उपभोग-क्रिया** आय एवं उपभोग नाम की दो मात्राओं के सम्बन्ध को व्यक्त करती है। वास्तव में इसको **उपभोग-प्रवृत्ति-अनुसूची** (Schedule of the propensity to consume) कहा जाता है, और अनुसूची अर्थ में लेने पर यह आय के भिन्न-भिन्न स्तरों पर कुल आय के उस समानुपात को व्यक्त करती है जिसे उपभोग पर व्यय किया जाता है। (Taken in the schedule sense, it indicates the proportion of the aggregate income that shall be spent on consumption at various levels of income.)

संक्षेप में, उपभोग-प्रवृत्ति अथवा उपभोग-क्रिया बताती है कि आय-परिवर्तन के साथ-साथ उपभोग-व्यय

बदलता है। यदि उपभोग को C द्वारा व्यक्त किया जाय और आय को Y द्वारा, तो उपभोग-प्रवृत्ति $= C(Y)$। दूसरे शब्दों में, उपभोग आय का फलन (function) है। उपभोग-प्रवृत्ति अथवा उपभोग-क्रिया दो मात्राओं के सम्बन्ध को व्यक्त करती है। (Propensity to consume or consumption function indicates a functional relationship between the two aggregates.) अर्थात् यह कुल राष्ट्रीय आय एवं कुल राष्ट्रीय उपभोग-व्यय के आपसी सम्बन्ध को प्रकट करती है।

इस चरण (stage) में उपभोग तथा उपभोग-प्रवृत्ति (अथवा उपभोग-क्रिया) के बीच के अन्तर को समझ लेना लाभदायक होगा। उपभोग से अभिप्राय उपभोग पर किये गये उस कुल व्यय से है जो समाज की कुल आय में से किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई देश अपनी 1,000 करोड़ रुपये की कुल आय से में 750 करोड़ रुपये उपभोग पर व्यय कर देता है तो यह 750 करोड़ रुपये की राशि उस देश के उपभोग का प्रतिनिधित्व करती है। आय-परिवर्तन के परिणामस्वरूप उपभोग में होने वाले परिवर्तनों को यदि हम अनुसूची (schedule) के रूप में व्यक्त करें तो अनुसूची उपभोग-प्रवृत्ति-अनुसूची अथवा उपभोग-क्रिया-अनुसूची (Consumption Function Schedule) कहलायेगी। इस प्रकार, उपभोग से अभिप्राय आय के किसी निश्चित स्तर पर उस राशि से है जो उपभोग पर व्यय की जाती है, जबकि उपभोग-प्रवृत्ति से अभिप्राय उस समूची अनुसूची से है जो आय के विभिन्न स्तरों पर उपभोग-व्यय को प्रदर्शित करती है। (Thus, consumption means the amount spent on consumption at a given level of income while consumption function or the propensity to consume implies the whole of the schedule showing consumption expenditure at various levels of income.)

रेखाकृति 39.1 में आय को X-अक्ष पर तथा उपभोग को Y-अक्ष पर मापा गया है। 45° पर उठने वाली रेखा एकता रेखा (unity line) है जहाँ सब स्तरों पर आय तथा उपभोग के बीच समानता है। परन्तु व्यावहारिक स्थिति इससे भिन्न है। वक्र C उपभोग क्रिया की रेखा है जिसका ऊपर की ओर दायें को ढालू होना इस ओर संकेत करता है कि उपभोग आय का बढ़ता हुआ फलन है। B सम-भेदन बिन्दु (break-even point) है, जहाँ $C = Y$ अथवा $OY_1 = OC_1$। जब आय बढ़कर OY_2 हो जाती है तो उपभोग भी बढ़कर OC_2 हो जाता है, परन्तु आय में वृद्धि की अपेक्षा उपभोग में वृद्धि कम होती है। आय के जिस भाग का उपभोग नहीं किया जाता, वह बचत है जोकि 45° की रेखा तथा वक्र C के बीच की दूरी SS' द्वारा दिखाया गया है। इस प्रकार, उपभोग फलन केवल उपभोग पर व्यय की गयी राशि को ही नहीं बल्कि बचत की भी माप करता है। यदि 45° रेखा को शून्य बचत रेखा माना जाय तो वक्र C की आकृति तथा स्थिति उपभोग तथा बचत में आय के विभाजन को दर्शाती है।

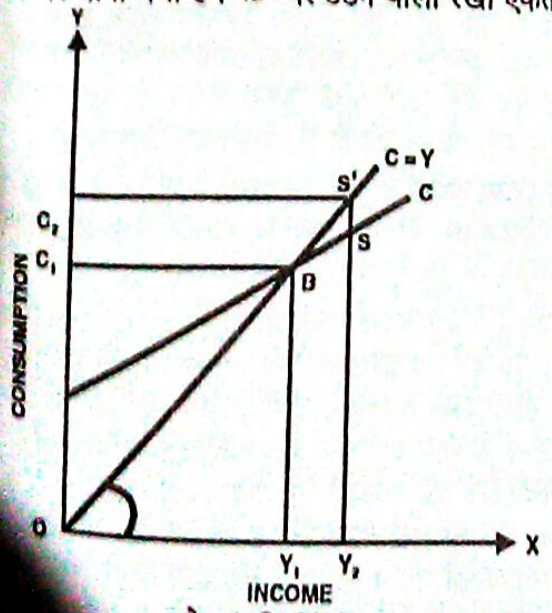

रेखाकृति 39.1

औसत उपभोग-प्रवृत्ति तथा सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति
[AVERAGE PROPENSITY TO CONSUME AND MARGINAL PROPENSITY TO CONSUME]

इस अवसर पर उपभोग की सीमान्त एवं औसत प्रवृत्ति के अन्तर को समझ लेना लाभदायक ही होगा। उपभोग का औसत प्रवृत्ति-सिद्धान्त कुल आय तथा कुल उपभोग-व्यय के अनुपात को व्यक्त करता है; अर्थात् यह C (consumption) और Y (income) का अनुपात होता है और इसे C/Y के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। उदाहरणार्थ, मान लीजिए किसी समुदाय की कुल आय 1,000 करोड़ रुपये और उपभोग-व्यय 800 करोड़ रुपये है, जब उपभोग की औसत प्रवृत्ति 800/1,000 अथवा 8/10 अथवा 80% होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि समुदाय अपनी आय का 80% उपभोग पर व्यय करता है। इस प्रकार आय के किसी भी स्तर पर उपभोग की औसत प्रवृत्ति के मूल्य को जानने के लिए उपभोग-व्यय को कुल आय से विभाजित किया जा सकता है।

इसके विपरीत, उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति औसत उपभोग-प्रवृत्ति से तनिक भिन्न होती है। यह प्रवृत्ति (सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति) केवल यह संकेत करती है कि अतिरिक्त आय-वृद्धि को व्यय एवं बचत में किस प्रकार विभाजित किया जाता है। **सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति को आय में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप उपभोग-व्यय में होने वाले परिवर्तनों का अनुपात या दर कहा जा सकता है, या इसको आय-परिवर्तनों के कारण औसत उपभोग-प्रवृत्ति में होने वाले परिवर्तनों की दर कहा जा सकता है।** (It may be defined as the ratio of the change in consumption consequent upon the change in income or as the rate of change in the average propensity as income changes.) उपभोग-वृद्धि (अथवा कमी) को आय-वृद्धि (अथवा कमी) से विभाजित करने पर उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति को ज्ञात किया जा सकता है। अतः इसका सूत्र $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ हुआ। Δ का अर्थ आय अथवा उपभोग के परिवर्तन से है। उदाहरणार्थ, मान लीजिए, आय में

10 करोड़ रुपये की और उपभोग-व्यय में 6 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है तो उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति सूत्र के अनुसार 6/10 अथवा 0.6 हुई।

उपभोग की औसत एवं सीमान्त प्रवृत्ति के अन्तर को रेखाकृति (39.2) द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। मान लीजिए,

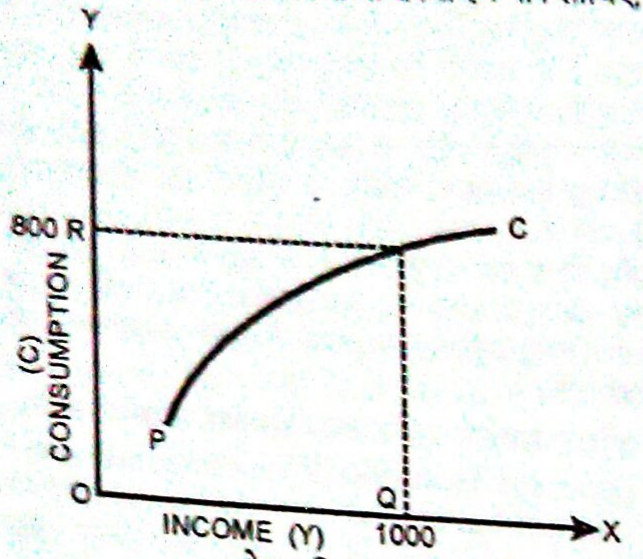

रेखाकृति 39.2

OX रेखा आय (*Y*) को और *OY* रेखा उपभोग (*C*) को प्रदर्शित करती है। वक्र *PC* उपभोग-प्रवृत्ति का द्योतक है। *OQ* = 1,000 करोड़ रुपये और *OR* = 800 करोड़ रुपये। 1,000 करोड़ रुपये की कुल आय पर उपभोग-व्यय 800 करोड़ रुपये है। अत: औसत उपभोग-प्रवृत्ति 800/1000 अथवा 8/10 अथवा 80% हुई। *PC* वक्र पर कोई अन्य बिन्दु लीजिए। यह बिन्दु *OX* रेखा पर आय और *OY* रेखा पर उपभोग को व्यक्त करेगा। तदुपरान्त, उपभोग की औसत प्रवृत्ति को सरलतापूर्वक निश्चित किया जा सकता है।

रेखाकृति 39.3 उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति को प्रदर्शित करती है। इस रेखाकृति में जब आय में 10 करोड़ रुपये की

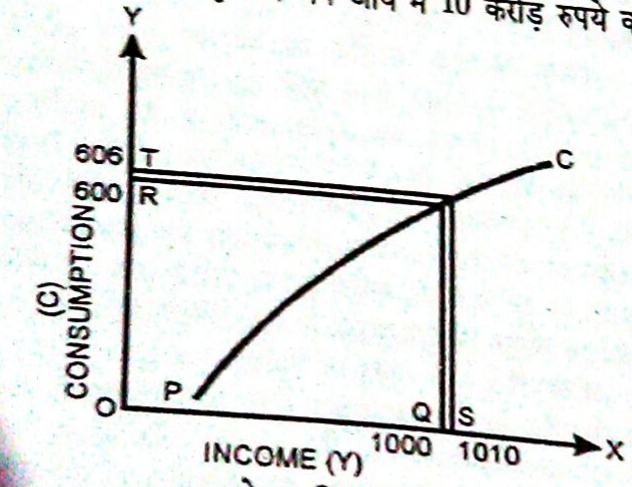

रेखाकृति 39.3

वृद्धि होती है, तब उपभोग-व्यय 6 करोड़ रुपये ही बढ़ता है। दूसरे शब्दों में, आय में 10 करोड़ रुपये की वृद्धि होने पर उपभोग-व्यय (*C*) 6 करोड़ रुपये बढ़ जाता है। अत: सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति 6/10 अथवा 0.6 होती है।

यह कहा जा सकता है कि यदि सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति ज्ञात हो तो बचत की सीमान्त प्रवृत्ति (marginal propensity to save) को सरलतापूर्वक निकाला जा सकता है। इसका सूत्र है : $1-\frac{\Delta C}{\Delta Y}$। उपर्युक्त उदाहरण में, यदि सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति (marginal propensity to consume) 0.6 है, तो सीमान्त बचत-प्रवृत्ति (marginal propensity to save) 0.4 होनी चाहिए क्योंकि सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति सीमान्त बचत-प्रवृत्ति से मिलकर 1 के बराबर हुआ करती है। यदि एक मात्रा ज्ञात है, तो दूसरी मात्रा को सरलतापूर्वक निकाला जा सकता है। कारण यह है कि किसी भी समुदाय की आय बचत एवं व्यय, इन दोनों में विभाजित रहती है। यदि व्यय-मात्रा ज्ञात है तो आय में से व्यय को घटा देने पर बचत को आसानी से जाना जा सकता है। किन्तु यह ध्यान रहे कि सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति सदा धनात्मक (positive) और 1 से कम रहनी चाहिए।

अब हमें उपभोग की सीमान्त एवं औसत प्रवृत्ति के सम्बन्ध पर विचार करना चाहिए। **नियम यह है कि जब आय में वृद्धि होती है तो सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति में कमी आती है। कमी औसत उपभोग-प्रवृत्ति में भी आती है किन्तु सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति औसत उपभोग-प्रवृत्ति की अपेक्षा और भी तेजी से घटती है।** दूसरे शब्दों में, दोनों ही प्रवृत्तियाँ आय-वृद्धि के साथ-साथ गिरती हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि एक प्रवृत्ति की गिरावट दूसरे की अपेक्षा अधिक होती है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि गरीबों में अमीरों की अपेक्षा **सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति** अधिक होती है। किसी व्यक्ति की आय जितनी ही अधिक बढ़ती जायेगी, उसमें भविष्य के लिए बचत करने की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक बलवती होती चली जायेगी क्योंकि उसकी अधिकांश आधारभूत मानवीय भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति पहले से ही हो चुकी होती है। इसलिए अमीरों में गरीबों की अपेक्षा **सीमान्त बचत-प्रवृत्ति** (marginal propensity to save) अधिक होती है। यदि किसी समय कुल राष्ट्रीय उपभोग में वृद्धि करना अनिवार्य हो जाय, तो क्रय-शक्ति को अमीरों (जिनमें उपभोग-प्रवृत्ति कम होती है) की ओर से गरीबों (जिनमें उपभोग-प्रवृत्ति अधिक होती है) की ओर हस्तान्तरित कर देना चाहिए। इसी प्रकार, यदि समुदाय के उपभोग में कमी करनी है तो उपभोग-करों द्वारा गरीबों से क्रय-शक्ति को ले लिया जाना चाहिए।

उपभोग-क्रिया अथवा उपभोग-प्रवृत्ति को निर्धारित करने वाले तत्व
(Factors Determining Consumption Function or Propensity to Consume)

उपभोग-प्रवृत्ति को निर्धारित करने वाले तत्वों का विवेचन करने से पूर्व हमें उपभोग-व्यय एवं उपभोग-प्रवृत्ति के अन्तर को स्पष्टत: समझ लेना चाहिए। उपभोग-व्यय वह निश्चित राशि है जो आय में से खर्च की जाती है। इस राशि में परिवर्तन सम्भव हो सकते हैं। दूसरे शब्दों में, यदि आय बढ़ जाती है तो उपभोग-व्यय भी बढ़ जाता है। इसके विपरीत, उपभोग-प्रवृत्ति उपभोग-व्यय की वह अनुसूची है जो आय के विभिन्न स्तरों पर उपभोग-व्यय की विभिन्न राशियों को व्यक्त करती है।

उपभोग-प्रवृत्ति स्थिर रहती है, यह तेजी से बदलती नहीं। उपभोग-व्यय तथा उपभोग-प्रवृत्ति का अन्तर वस्तुतः राशि तथा अनुसूची का अन्तर है। (The difference between consumption expenditure and propensity to consume is really the difference between an amount and a schedule.) आय में परिवर्तन होने से उपभोग-राशि तो बदलती है लेकिन उपभोग अनुसूची अल्प-काल में स्थिर ही रहती है।

अब हम उन तत्वों का अध्ययन करेंगे जो **उपभोग-प्रवृत्ति** को शासित करते हैं। उपभोग-प्रवृत्ति चाहे ऊँची हो अथवा निम्न, उसका निर्धारण निम्नलिखित तत्वों के आधार पर होता है :

(1) **द्रव्य आय** (Money Income)—समुदाय की उपभोग-प्रवृत्ति को प्रभावित करने वाला यह एक आवश्यक तत्व है। जैसे ही सामुदायिक आय बढ़ती है, वैसे ही उपभोग भी बढ़ जाता है; और जब समुदाय की आय घटती है तो उपभोग भी घट जाता है।

(2) **धन का वितरण** (Distribution of Wealth)—समुदाय के विभिन्न वर्गों में जिस प्रकार से धन का वितरण होता है, उपभोग-प्रवृत्ति भी उसी प्रकार शासित होती है। धन का जितना ही अधिक असमान वितरण होगा, उपभोग-प्रवृत्ति भी उतनी ही निम्न होगी; और धन का जितना ही अधिक समान वितरण होगा, उपभोग-प्रवृत्ति भी उतनी ही अधिक ऊँची होगी।

(3) **कीमत एवं मजदूरी-स्तर** (Price and Wage Levels)—कीमत एवं मजदूरी के स्तरों में परिवर्तन भी उपभोग-प्रवृत्ति को प्रभावित करते हैं। कीमत-स्तर की वृद्धि वास्तविक आय में कमी करके उपभोग-प्रवृत्ति को घटाती है, तथा इसके विपरीत, कीमत-स्तर की गिरावट वास्तविक आय को बढ़ाकर उपभोग-प्रवृत्ति को बढ़ाती है। इसी प्रकार से ही, अन्य बातों के समान रहने पर, मजदूरी-स्तर की वृद्धि अवश्य ही उपभोग-प्रवृत्ति को बढ़ाती है तथा इसके विपरीत मजदूरी-स्तर की गिरावट उपभोग-प्रवृत्ति को कम कर देती है।

(4) **उपभोक्ताओं की रुचियों एवं फैशनों के परिवर्तन**—उपभोक्ताओं की रुचि और फैशन के परिवर्तन भी उपभोग-प्रवृत्ति को प्रभावित कर सकते हैं, यद्यपि अल्पकाल में ऐसे परिवर्तन उपभोग-प्रवृत्ति को प्रभावित करने में पर्याप्त प्रभावपूर्ण नहीं होते।

(5) **अप्रत्याशित लाभ एवं हानियाँ** (Windfall Gains and Losses)—लाभों एवं हानियों के कारण भी लोगों की उपभोग-प्रवृत्ति में परिवर्तन आ सकता है। विश्वास किया जाता है कि विगत 1920-29 के वर्षों में संयुक्त राज्य अमरीका में अमीरों की उपभोग-प्रवृत्ति को स्टॉक एक्सचेंजों (stock exchanges) से उपलब्ध अप्रत्याशित लाभों ने ऊँचा कर दिया था। इसके विपरीत, यदि लोगों को भारी एवं आकस्मिक हानियाँ होती हैं तो उपभोग-प्रवृत्ति सम्भवतः गिर जाया करती है।

(6) **राजकोषीय नीति** (Fiscal Policy)—राजकोषीय नीति के परिवर्तन भी उपभोग-प्रवृत्ति पर प्रभाव डालते हैं। भारी अप्रत्यक्ष कर सदा ही उपभोग-प्रवृत्ति को प्रभावित किया करते हैं, और सम्भवतः इसे घटा भी देते हैं। हम देख चुके हैं कि द्वितीय युद्ध-काल में भारी अप्रत्यक्ष करों, राशनिंग और कीमत-नियन्त्रण के कारण उपभोग-प्रवृत्ति बहुत ही घट गयी थी। इन सभी तत्वों ने उपभोग और आय के सामान्य सम्बन्धों को विचलित कर दिया था।

(7) **आशंसाओं में परिवर्तन** (Changes in Expectations)—उपभोग-क्रिया अथवा उपभोग-प्रवृत्ति केवल वर्तमान परिवर्तनों से ही प्रभावित नहीं हुआ करती वरन् यह भविष्य के परिवर्तनों की आशंसाओं से भी प्रभावित हुआ करती है। युद्ध उपभोग-प्रवृत्ति को पर्याप्त रूप में प्रभावित करता है क्योंकि युद्ध के कारण लोग भावी कमी की पूर्वशंका कर लेते हैं। वे आवश्यक वस्तुओं को खरीदने पर ही नहीं, बल्कि उनके संग्रह करने पर भी टूट पड़ते हैं जिसके परिणामस्वरूप उपभोग-प्रवृत्ति स्वतः ही ऊँची हो जाती है।

(8) **मितव्ययता के प्रति दृष्टिकोण** (Attitude Towards Thrift)—लोगों की मितव्ययता के प्रति भावना भी उपभोग-प्रवृत्ति को प्रभावित करती है। यदि लोगों में बचत के प्रति यही परम्परागत भावना बनी रहती है कि वह एक अमिट गुण है तो उपभोग-प्रवृत्ति पर अवश्य ही विपरीत प्रभाव पड़ेगा और, इसके विपरीत, केन्स के अनुसार, लोगों की इस भावना में यदि परिवर्तन लाया जाये तो उपभोग-प्रवृत्ति ऊँची और बचत-प्रवृत्ति निम्न होगी।

(9) **नकद परिसम्पत्तियों का संग्रह** (Holdings of Liquid Assets)—जिन लोगों के पास बचत के रूप में बहुत-सी परिसम्पत्ति (assets) होती हैं, वे अपनी चालू आय (current income) में से अधिक मात्रा में व्यय करने को तैयार हो जाते हैं क्योंकि इस प्रकार की परिसम्पत्तियों से लोगों में सुरक्षा-भावना का सृजन होता है। किन्तु जब लोगों के पास इस प्रकार की कोई भी बचत नहीं होती है तो वे अपनी चालू आय में से अधिक व्यय करने के लिए तैयार नहीं होते। व्यक्तियों की युद्धकालीन बचतों ने युद्धोत्तर काल में उपभोग-प्रवृत्ति को बहुत ऊँचा कर दिया था।

(10) **निगमों की व्यावसायिक नीतियाँ** (Business Policies of Corporations)—निगमों की मूल्य-ह्रास (depreciation) और प्रारक्षित कोष (reserves) सम्बन्धी व्यावसायिक नीतियाँ भी उपभोग-प्रवृत्ति को प्रभावित करती हैं। मूल्य-ह्रास (depreciation) एवं प्रारक्षण (reserves) सम्बन्धी अनुदार नीति उस आय को कम कर देते हैं जो हिस्सेदारों में वितरित होने के लिए उपलब्ध होती है और परिणामतः हिस्सेदारों के उपभोग-व्यय भी कम हो जाते हैं। इसी प्रकार, यदि निगम एक सावधानीयुक्त लाभांश-वितरण-नीति (cautious dividend policy) का अनुसरण करते हैं तो हिस्सेदारों की उपभोग-प्रवृत्ति कम हो जाती है। इस कमी का कारण यह होता है कि हिस्सेदारों के पास व्यय करने के लिए पर्याप्त आय नहीं होती।

(11) **सामाजिक बीमा** (Social Insurance)—बीमे की किस्तों की अदायगी भी लोगों की व्यय-शक्ति को कम कर देती है। इस प्रकार उनकी उपभोग-प्रवृत्ति कम हो जाती है।